पुराणों में वास्तु की महत्ता का जन–जीवन पर प्रभाव

*डॉ. भास्कर शर्मा

वास्तु का हमारे जीवन में बहुत महत्व है, वास्तु विज्ञान के अनुसार भवन आदि का निर्माण पूर्णतः वैज्ञानिक ज्ञानिक है।

प्रारम्भ से ही वास्तु का देवता गण भी भवन निर्माण में विशेष ध्यान रखते थे, वास्तु पूजा का विधान और वास्तु के नियम सभी के लिए आवश्यक है।

जिन भवनों का निर्माण एवं द्वार दक्षिण दिशा में होता है, वे सभी दोषयुक्त होते हैं और उनका कलाफल भी नेष्ट होता है। आकाश के गोले में प्रतिदिन सभी तारा, ग्रहादिकों के 24 घंटे में भ्रमण करके उसी स्थान पर प्रत्यावर्तन के जो मार्ग हैं, वे समानान्तर वृत्त के रूप में होते हैं। आकाश का यह गोल खगोल है। इस खगोल के केन्द्र से जो लम्बरेखा ग्रह मार्ग के वृत्त के समतल पर खींची जाती है, वह खगोल का अक्ष है। अक्ष के ऊपरी और निचले बिन्दुओं को उत्तरध्रुव और दक्षिण ध्रुव कहते हैं। इस तरह जब भवन निर्माण में इन बातों का ध्यान नहीं दिया जाता तब वे दोष प्रणाली के जनक हो जाते हैं और नेष्ट फलदायी सिद्ध होते हैं।

देवताओं की प्रसन्नता से वास्तुशास्त्र जनित दोष सर्वथा नष्ट हो जाता हैं। देवालय अथवा राजगृह का निर्माण बिना नियम के नहीं करना चाहिये। लोकपालों की पूजा और पीठ पर उनकी स्थापना परमावश्यक है। चारों वर्णों के लिए पीठों का विभागशः वर्णन किया गया है। इसी के अनुसार पीठों को समझकर अपने आराध्य देव की पूजा करने से शांत प्राप्ति होती है।

मत्स्यपुराण के बिना गृहनिर्माण करना उसी प्रकार अशोभनीय लगता है, जैसे बिना प्रतिबिम्ब के दर्पण। इसलिये मत्स्यपुराण के बिना, उसके नियम के बिना उसकी मौलिक औपचारिकता के बिना घर का निर्माण करना विलोडित करने के जैसे है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव उन–उन खबरों पर देखा जा सकता है जो निर्जीव होकर निरालंवित रूप में अपनी दर्दमयी गाथा का वर्णन कर रहे हैं। जिसमें शिक्षा समृद्धि व्यवहार का प्रयोग उसमें रहने वाले को नहीं मिलता। परिणामतः एक सुसम्पन्न व्यवस्थित बनाया गया घर भूतों के निवास स्थान सा लगता है। इन सब स्वरूपों का प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर ही गृह निर्माण में वास्तुशास्त्र पर गौर करने की आवश्यकता है।

वस्तुतः एक प्रश्न उपस्थित होता है कि वास्तु क्या है ? तो इसका जवाब है कि वास्तु एक वैज्ञानिक कला है। इसके विषय में जनता में जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है। इसे स्पष्ट समझने के लिए वर्षों से चले आ रहे वैदिक साधु संतों के अनुभवों को आत्मसात करने की आवश्यकता है। उसी से शान्ति और सुख प्राप्त होता है। चीन, थाईलैण्ड और सिंगापुर के वास्तुशास्त्र भी विकसित है तथा पश्चिमी देशों में इसका प्रचार–प्रसार बहुत है। एशियाई देशों के अतिरिक्त भी वास्तुशास्त्र केवल एक आधारहीन मिथक नहीं हैं। बल्कि जो पांच तत्वों के बीच एक संतुलन है उसे प्रशस्त करने का मार्ग दिखलाता है। गुरुत्वाकर्षण बल पर आधारित यह चुम्बकीय शक्ति, हवा और

पानी की धाराओं, पर्यावरण के विद्युत धाराओं के प्रभाव तथा सौर किरणों आदि को प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है।

भारतीय वाङ्मय में मिलेनियम के सिद्धांतों के पहले ज्ञान से परिपूरित साधुओं ने स्वयं के सिद्धांतों को निर्धारित किये हैं जो सदा से मान्य हैं। वेद के एक हिस्से में वास्तुशास्त्र पर पूरा निबन्ध लिखा गया है जो बुनियादी सिद्धांतों को प्रदर्शित करने में समर्थ है। भारतीय दर्शन के अनुसार हर कण ब्रह्माण्ड का एक हिस्सा है और इसीलिए क्षुद्र तथा सार्वभौमिक बलों से प्रभावित है। वेदों में गृहों के निर्माण पर धार्मिक कृत्य करने का विधान बताया गया है। चार पुरुषार्थों की प्राप्ति भी वास्तुशास्त्र के अनुसार की जा सकती है। फेंगशुई और चीन में भी वास्तुशास्त्र की समानता पायी जाती है। ये दोनों देश सकारात्मक और नकारात्मक अस्तित्व को मानते हैं। वास्तविक तथ्य यह है कि भारत में इसकी लोकप्रियता अत्यधिक है किन्तु अन्यान्य देश भी इसके महत्व से अछूते नहीं हैं।

गृह निर्माण में प्राकृतिक पर्यावरण को बाधा माना जाता वास्तुशास्त्र इन सभी में एकरूपता का मार्ग दिखलाया, जिसके कारण सार्वभौमिक बलों के व्यावहारिक ऊर्जा प्राप्त करने में हम सक्षम हुए। शान्ति, एकाग्रता, समृद्धि और सफलता के विषय में यह सिद्धान्त अडिग है और हमारे अस्तित्व के पांचों तत्वों से परिपूरित है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि हमारे शरीर में पांच तत्व विद्यमान हैं और वास्तुशास्त्र भी इन पांच तत्वों की सत्ता को स्वीकार करता है। दक्षिण दिशा की ओर पैर करके सोने में दोष माना जाता है क्योंकि उसका रक्त चाप मंद गति को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए उत्तर अथवा अन्यान्य दिशाओं में पैर करके सोने का विधान है। यदि ऐसा नहीं करते हैं तो एकाग्रता सम्भव नहीं होगी तथा शान्ति नष्ट हो जायेगी। अलौकिक शाक्तियाँ विद्यमान हैं जिस पर विश्वास करना प्रत्येक मानव का धर्म है। ये शक्तियाँ कहीं बाहर नहीं हैं। हमारे चारों ओर रहती हैं किन्तु उनके प्रभाव को हम स्वीकार नहीं कर पाते इसीलिए नकारात्मक परिणाम प्राप्त होता है। वैदिक काल में हमारे पूर्वजों ने शायद इस घटना का पता लगाया था और वे भी इस ऊर्जा के प्रवाह के साथ सौहार्द्र स्थापित करने की कला जानते थे तथा मानवों को इसकी जानकारी पहुंचाने में समर्थ हुए।

ऋषियों ने पूछा– सूतजी ! अब आप इन सभी देवताओं की प्रतिमा के स्थापन की उत्तम विधि यथार्थरूप से विस्तारपूर्वक बतलाइये। क्योंकि इनका जनजीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है–

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्।

वद सूत यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषतः।।[1]

सूतजी कहते हैं – ऋषियो! अब मैं क्रमशः देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा की उत्तम विधि तथा मण्डप, कुण्ड और वेदी के प्रमाण को बतला रहा हूँ। फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ अथवा माघमास में सभी देवताओं की प्रतिष्ठा शुभदायिनी होती है। दक्षिणायन बीत जाने पर अर्थात् उत्तरायण में शुभकारी शुक्लपक्ष में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी, पूर्णमासी तिथियों में विधिपूर्वक की गयी प्रतिष्ठा बहुत फल देने वाली होती है। पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपद, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा तथा स्वाती– ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदि में प्रशस्त माने गये हैं –

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्।

कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणं च यथाक्रमम्।।

चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा।

माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्।।

प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते दक्षिणायने

पंचमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा।।

दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी।

आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृता बहुफला भवेत्।।

आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च।

ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा।

अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते।।

बुधो बृहस्पतिः शुक्रस्त्रयोऽप्येते शुभग्रहाः।

एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रं च प्रशस्यते।।

ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च।

निमित्तं शकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाद्भुतादिकम्।।

शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रहविवर्जिते।

लग्ने ऋक्षे प्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम्।।[2]

अयन, विषुव और षडशीतिमुख संक्रान्तियों में विविधपूर्वक अनुष्ठान द्वारा देवस्थापन करना चाहिये। चतुर मनुष्य को चाहिये कि वह प्राजापत्य मुहूर्त में शयन, श्वेत में उथापन तथा ब्राह्म में स्थापन करे। अपने महल की पूर्व अथवा उत्तर दिशा में मण्डप बनवाना चाहिये। उसे सोलह, बारह अथवा दस हाथ का बनाना चाहिये। उसके मध्य भाग में वेदी होनी चाहिये, जो चारों ओर से समान तथा पाँच, सात या चार हाथ विस्तृत हो। चतुर्मुख मण्डप के चारों ओर चार तोरण बने हों। पूर्व दिशा में पाकड़ का, दक्षिण में गूलर का, पश्चिम में पीपल का तथा उत्तर में बरगद का द्वार होना चाहिये, जो भूमि में एक साथ प्रविष्ट हों तथा भूमि से ऊपर चार हाथ ऊँचे हों। उसका भूतल भलीभांति लिपा हुआ, चिकना तथा सुन्दर होना चाहिये। इसी प्रकार विविध वस्त्र, पुष्प और पल्लवों से सुशोभित करना चाहिये। इस प्रकार मण्डप का निर्माण कर पहले चारों द्वारों पर छिद्र रहित आठ कलशों की स्थापना करनी चाहिये, जो देदीप्यमान सुवर्ण की भाँति कान्तियुक्त, आम के पल्लवों से आच्छादित, दो श्वेत वस्त्रों से युक्त, सभी औषधियों एवं फलों से सम्पन्न तथा चन्दन मिश्रित जल से परिपूर्ण हों। इस प्रकार उन कलशों को स्थापित कर गन्ध, धूप आदि पूजन–सामग्रियों द्वारा उनके भीतर पूजन करे। फिर मण्डप के चारों ओर ध्वजा आदि की स्थापना करनी चाहिये।

अयने विषुवे तद्वत् षडशीतिमुखे तथा।

एतेषु स्थापनं कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा।।

प्राजापत्ये तु शयनं श्वेते तूत्थापनं तथा।

मुहूर्ते स्थापनं कुर्यात् पुनर्ब्राह्मे विचक्षणः।।

प्रासादस्योत्तरे वापि पूर्वे वा मण्डपो भवेत्।

हस्तान् षोडश कुर्वीत दश द्वादश वा पुनः।।

मध्ये वेदिकया युक्तः परिक्षिप्तः समंततः।

पंच सप्तापि चतुरः करान् कुर्वीत वेदिकाम्।।

चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः।

प्लक्षद्वारं भवेत् पूर्वं याम्ये चोदुम्बरं भवेत्।।

पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे।

भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानि चोच्छ्रये।।

सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्णं भूतलं स्यात् सुशोभनम्।

वस्त्रैर्व्रनाविधैस्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम्।।

कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारिषु विन्यसेत्।

अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्का×चनगर्भितान्।।

चूतपल्लवसंछन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान्।

सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान्।।

एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः।

ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः।।[3]

लोकपालों की पताका सभी दिशाओं में स्थापित करे। मण्डप के मध्यभाग में बादल के रंग की अथवा बहुत ऊँची पताका स्थापित करनी चाहिये। फिर क्रमशः लोकपालों के पृथक्–पृथक् मन्त्रों द्वारा गन्ध धूपादि से उनकी पूजा करे तथा उन्हीं के मन्त्रों द्वारा उन्हें बलि प्रदान करे। ब्रह्माजी के लिये ऊपर तथा शेष वासुकिके लिये नीचे पूजा का विधान कहा गया है। संहिता में जो मन्त्र जिस देवता के लिये आये हैं, उसी के लिये प्रयुक्त होने पर मंगलकारी माने गये हैं। उन्हीं मन्त्रों द्वारा चारों ओर लोकपालों की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् तीन रात, एक रात, पांच रात अथवा सात रात तक उनका अधिवासन करना चाहिये। इस प्रकार तोरण तथा उत्तम अधिवासन कर उक्त मण्डप की उत्तर दिशा में उसके आधे, तिहाई अथवा चौथाई भाग के परिमाण से उत्तम स्नानमण्डप का निर्माण करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष लिंग या मूर्ति को लाकर कारीगरों तक उनके सभी अनुचरों की वस्त्र, आभूषण और रत्न द्वारा पूजा करे। तदनन्तर यजमान उनसे यह कहे कि 'मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये।' तत्पश्चात् देवता को बछौने पर लिटाकर उनकी नेत्रज्योति सम्पादित करे–

एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः।

ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः।।

ध्वांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत्।

पताका जलदाकारा मध्ये स्यान्मण्डपस्य तु।।

गन्धधूपादिकं कुर्यात् स्वैः स्वैर्मन्त्रैनुक्रमात्।

बलिं च लोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत्।।

ऊर्ध्वं तु ब्रह्मणे देयं त्वधस्ताच्छेषवासुकेः।

संहितायां तु ये मन्त्रास्तद्दैवत्याः शुभाः स्मृताः।।

तैः पूजा लोकपालानां कर्तव्या च समन्ततः।

त्रिरात्रमेकरात्रं वा पंचरात्रमथापि वा।।

अथवा सप्तरात्रं तु कार्यं स्यादधिवासनम्।

एवं सतोरणं कृत्वा अधिवासनमुत्तमम्।।

तस्याप्युत्तरतः कुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम्।

तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुनः।।

आनीय लिङ्गमर्चां वा शिल्पिनः पूजयेद् बुधः।

वस्त्राभरणरत्नैश्च येऽपि तत्परिचारकाः।।

क्षमध्वमिति तान् ब्रूयाद् यजमानोऽप्यतः परम्।

देवं प्रस्तरणे कृत्वा नेत्रज्योतिः प्रकल्पयेत्।।[4]

'विष्णो! आप शिव, परमात्मा, हिरण्यरेता, विश्वरूप और ऐश्वर्यशाली हैं, आपको बारंबार नमस्कार है।' यह मन्त्र सभी देवताओं की प्रतिमा में नेत्रज्योति संस्कार में उपयोगी माना गया है। इस प्रकार देवेश को आमन्त्रित कर सुवर्ण की शलाका द्वारा उन्हें चिह्नित करे। तदुपरान्त विद्वान् पुरुष अपनी समृद्धि तथा अमंगल का विनाश करने के लिये मांगलिक वाद्य, गीत और ब्राह्मणों की वेदध्वनियों का समारोह करे। लिंग के तीन भाग करना चाहिये। उसमें विभाजक लक्षण होता है। आठ जौ का अन्तर रखते हुए तीन रेखा चिह्नित करनी चाहिये, वे न तो मोटी हों, न सूक्ष्म हों, न टेढ़ी हों और न उनमें छिद्र हो। ज्येष्ठ लिंग में जौ के प्रमाण की निम्न रेखा अंकित करनी चाहिये। उसके ऊपर उससे सूक्ष्म रेखा बनायें और मध्यम लिंग में स्थापित करें। फिर बुद्धिमान् पुरुष आठ भाग करके तीन भागों को छोड़ दे और दोनों पार्श्वों में समान अन्तर रखते हुए सात लम्बी रेखाएं चिह्नित करें। विद्वान् पुरुष चार भागों तक रेखाएं चिह्नत करें, पांचवें भाग के ऊपर रेखा घुमानी चाहिये और तदनन्तर मिला देनी चाहिये। यहीं पृष्ठभाग में रेखाओं का संगम होगा। इन दो रेखाओं के संगमस्थल पर पृष्ठदेश में दो भाग हो जायेंगे –

अष्टभक्तं ततः कृत्वात्यक्त्वाभागत्रयं बुधः।

लम्बयेत् सप्त रेखास्तु पार्श्वयोरुभयोः समाः।।

तावत् प्रलम्बयेद् विद्वान् यावद्भागचतुष्टयम्।

भ्राम्यतेपंचभागोर्ध्वं कारयेत् संगमं ततः।।

रेखयोः संगमेतद्वत् पृष्ठे भागद्वयं भवेत्।

एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया।। [5]

मत्स्यपुराण इन सभी का प्रतिपादन विधिवत् करता है। हमारे आर्य ऋषियों ने समाज को ऐसा ज्ञान देकर ऋणी बना दिया। इसीलिये मनुष्य के ऊपर जो तीन ऋण होते हैं उनमें एक ऋषि ऋण भी होता है। इनका सम्यक् ध्यान ही शुभ फलदायी होता है।

*व्याख्याता
सामान्य संस्कृत,
राजकीय आचार्य संस्कृत, महाविद्यालय
भरतपुर, (राज.)

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. मत्स्यपुराण 264/1
2. मत्स्यपुराण 264/2–10
3. मत्स्यपुराण 264/11–20
4. मत्स्यपुराण 264/21–28
5. मत्स्यपुराण 264/38–40